युग-दीप

उदयशंकर भट्ट

गौतम बुक डिपो, दिल्ली ।

प्रकाशक
गौतम बुक डिपो
दिल्ली

मूल्य : दो रुपये
[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक
न्यू इंडिया प्रेस
नई दिल्ली

कविता-क्रम



अपनी बात

"युग दीप" की कुछ कविताएँ युद्ध से पूर्व की, शेष सब युद्ध काल की हैं। इसीलिये वे 'युगदीप' का स्वरूप को प्रायः विराट का प्रतीक लेकर चली हैं। युद्ध ने आज हमारे दृष्टि-कोण को बदल दिया है, प्रत्येक वस्तु को, परिस्थिति को नये ढंग से देखने को बाधित किया है। इसीलिये आज के मनुष्य के सामने से संकुचित समाज, देश तथा वर्ग की भावनाएँ हट गई हैं। आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं ने मनुष्य के व्यक्तित्व को बदल कर उसकी दृष्टि को संसार के प्राङ्गण पर फैला दिया है, जिससे जाति, नदियों, पर्वत, समुद्र, आकाश और सारे बन्धन व्यर्थ नहीं रह गये हैं। रह गया है एकमात्र विराट देश और इसकी भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ।

मैं नहीं मानता कि आज के मनुष्य के सामने अनादि काल से चले आये जीवन के 'दृष्टिकोण' का कोई अस्तित्व नहीं रहा है! क्योंकि जैसे देश करवट बदल रहे हैं वैसे ही मनुष्य का व्यक्तित्व भी करवट बदल रहा है। उसके सुख-दुख, आशा-निराशा, भाव-अभाव सब में एक नई क्रांति हो रही है। उसमें अपने को नई परिस्थिति के अनुसार ढालने की क्षमता भी आ रही है। ऐसी क्षमता का समर्थन युद्ध-काल से पूर्व की मेरी ये कविताएँ करेंगी। दूसरे प्रकार की कविताओं के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। वे स्वयं अपनी बातें पाठकों से कह रही हैं।

भारती,
संवत् २००१ विक्रम,
लखनऊ।

उदयशंकर भट्ट

दूसरे संस्करण की भूमिका

वर्ष बीतते-बीतते जब युग-दीप के दूसरे संस्करण की बात सुनी तब मालूम हुआ कि हमने पुराने आधारों को धो डाला है और मनुष्य की बात कहना प्रारम्भ कर दिया है इसीलिए मनुष्य (पाठक) को अपनी बात रुची है। क्यों न हो—आज मनुष्य का सभी कुछ तो बदल गया है रुचि और रुचि का दृष्टिकोण भी।

युग-दीप में मैंने अपनी बीमारी से पहले की एक और बाद की दो कवितायें और जोड़ दी हैं। ये मेरे मनुष्य को देखने के दूसरे पहलू का नमूना हैं। मेरा विश्वास है एक युग था जब मनुष्य ने विभेद की सृष्टि की थी और उसके द्वारा उसने संसार को स्वर्ण-युग बनाने का स्वप्न देखा था किन्तु प्रयोग निष्फल रहा, उसमें वीरता, शूरता के नाम पर हत्या, मारकाट, दम्भ का साम्राज्य रहा। निश्चित यही है कि अब दूसरा दृष्टिकोण 'यूनिवर्सल' बनकर उसके सामने आ रहा है, यह भी 'प्रयोग' है संभव है सफलता मिले—जीवन का दूसरा नाम 'प्रयोगावस्था' है। हम सब वैसा ही करते जानते जा रहे हैं।

विश्वास है, एक दिन लक्ष्य तक पहुँचेंगे जो अब दूर नहीं दिखाई देता। किन्तु दूसरा संस्करण काफी दिनों बाद निकल रहा है: और निकल रहा है यही मेरे लिये काफ़ी है, मैं उसके लिये कोई कारण बताना आवश्यक नहीं समझता।

दिल्ली, १९ नवम्बर, १९४९। उदयशंकर भट्ट

एक

धीरे धीरे युग-दीप जला।

अगणित शैशव के हास पिये, यौवन-अतृप्त के इशारा पिये,
मलयज दोलित मधुमास पिये,
पीकर भी हिम सा स्वयं गला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

किंकिणी रात की पहन हँसा, ऊषा पर मुग्ध, न किन्तु रसा,
फूलों के हासों पर न बसा,
दौड़ा न कहीं, रुकना न चला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

संध्या-प्रभात, दिन-रात पिये, अगणित वसन्त, बरसात पिये,
अगणित गरमी हिम-पात पिये,
तूफ़ान मिले न हुआ धुँधला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

मानव की स्वार्थपरायणता, मानव की अर्थपरायणता,
मानव की युद्धपरायणता—
का पीकर खून हुआ उजला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

मानव की चर्बी से भर कर, बत्ती लाशों की बना सुधर,
संघर्ष अनंत निगल खरतर,
भू का आलोकित दीप बला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

शैशव, यौवन जल क्षार हुए, अगणित पन्थी उस पार हुए,
तेरी गति में न विकार हुए,
अपने को खाकर आप चला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

दो

अंधकार, अंधकार, अंधकार, चीर चल ।
उग रही उषा उधर, उग रहा दिन सकल ।

रोक मत प्रकाश को, रोक मत विकास को,
रोक अट्टहास को—मानव उच्छृंखल ?

भूल है, अशान्ति है, युद्ध और क्रान्ति है,
क्रान्ति विश्व शान्ति है—हो न तू निर्बल ?

लड़ रहे आज ये, लड़ रहे राज ये,
स्वार्थ के समाज ये—खून के रच महल ।

युद्ध है बजार में, युद्ध है विचार में,
बजार की पुकार में—युद्ध है आजकल ।

आसमान फट रहे औ' श्मशान पट रहे,
तख्त भी उलट रहे—देख देख पलपल ।

मनुष्य मात्र एक है, मनुष्य ही विवेक है,
मार्ग यदि अनेक हैं—लक्ष्य एक उज्ज्वल ।

अंधकार, अंधकार, अंधकार, चीर चल ।

गीत

पल पल करके युग बीत गया—
भोली दुनियाँ के प्यार गये,
सोने के वे संसार गये,
जब मिले न तब पहचान सका—
जब चले गये तब जान सका,
प्राणों की पीड़ा में रह रह जब प्यास जगी घट रीत गया?
प्राणों को जब अरमान मिले,
अरमानों को नव-गान मिले,
जब असफलता अभिशापों के—
जीवन में नव वरदान मिले,
तब मैं मन ही मन हार गया, अभिमान किसी का जीत गया।
हर सुबह जवानी आती है,
हर साँझ कहीं छिप जाती है,
दिन पल पल ढलता जाता है,
जग पल पल चलता जाता है,
पल पल मेरा भी 'वर्तमान-जीवन' बन एक अतीत गया।
जो मिला न वह रंग ही पाया,
जो गया न वह फिरकर आया,
क्या होगा आगे ज्ञात नहीं,
बतलाने वाला साथ नहीं,
आशा ही आशा में मेरा सारा जीवन बन गीत गया।
कोई बिखेरता जाता है,
कोई समेटता जाता है,
निशि दिन की चर्खी पर—
जीवन-डोरी लपेटता जाता है,
कंकाल मात्र वह आज बना जो जीवन बीत पुनीत गया।
पल पल करके युग बीत गया।

चार

अंधकार अनंत सिर धर जल रहा दीपक अकेला !
अमित भू, निःसीम नभ-
ऊपर तिमिर - घन जाल भी है .
पवन रह रह चल रहा जीवन—
अनोखा काल भी है ;
नदी तट पर मूक जलता हँस रहा फिर भी उजेला !

श्वास लघु, उन्माद मीठे ,
साधना के ध्यान संबल ,
उगलता वरदान उज्ज्वल ,
घूँट में पी निशा का जल ;
तिमिर-जीवन में सँजोये प्राण का आह्वान खेला ?

काल की अक्षय अमा में—
हाय, इसका हास कितना ?
धूम - छाया-चित्र में हिम-तूलि-
का इतिहास कितना ?
जलन में निर्माण भर कर, नाश में उल्लास मेला ?

निकल कितनी दूर आया ,
दूरियाँ भी पार की हैं ;
धूम ही जब अंत इसका—
तब जलन बेकार की है ?
साँझ तेरा 'अथ', उषा में—
अंत होता जा रहा है ,
उदय ही जल जल मरण का—
पन्थ होता जा रहा है !
मृत्यु से अणु-प्राण का किसने उजेला बढ़ उड़ेला ?

पाँच

दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू !
सृष्टि का मधुमास मैं, रे प्रलय का निश्वास तू।

खिल रहा यौवन - निशा का हूँ जवानी में,
भूमि पर तारे उगा कहता कहानी मैं।

आग से मत खेल मैं अंगार हूँ जग का,
स्वयं जलकर कर रहा शृंगार हूँ जग का।

आँख हूँ मैं विश्व की, उल्लास हूँ अपना,
प्राण का व्यापार हूँ मैं स्वर्ग का सपना;

हास हूँ मैं सृष्टि का—अपना स्वयं उपहास तू—
दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू ?

—लगा कहने तिमिर बैठा दीप के नीचे,
देख आँखें खोल आगे, देख टुक पीछे,

घेर चारों ओर से मैं ताकता तुझको,
अंत तेरा है मुझी में भय नहीं मुझको,

तू लहर है तिमिर-सागर में उठी औ' सो गई,
तारिका सी रात में झाँकी, थकी औ' सो गई ?

मैं असीम, ससीम जीवन का अरे, लघुश्वास तू ?
दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू !

छः

मैं जीवन से भय खाता हूँ—
अपना रूप देख शीशे में कहीं अचाहा खो जाता हूँ।

देख रहा हूँ उस सपने को—
जिसमें पिसती हुई जवानी,
धीरे धीरे लिखती जाती—
रक्त-बिन्दु से क्रान्ति-कहानी।
देख रहा हूँ वह अदृश्य कल—
मानव रुण्ड रुधिर से न्हाता;
लक्ष लक्ष ज्वाला-मुखियों से,
नवयुग का शृंगार सजाता।

प्रणय-गीत में क्रान्ति बोलती कब विद्रोह दबा पाता हूँ?
मैं अपने से भय खाता हूँ —

रोज शाम को संध्या का मुख—
मुझे दिखाता खूनी सागर!
तारे बेशुमार लाशों के—
मुख गत-साँस, चंद्र हड्डी-घर,
पुण मृत्यु का हास दीखते,
सब सागर मनु का जल-प्लावन;
नदियों की गहराई में भय,
मुझे दीखता मरण मरण जन।

स्वयं हास में कंकालों का अट्टहास सुन अकुलाता हूँ।
मैं अपने से भय खाता हूँ—

सात

सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है,
जो रौशन से दूर जवानी में वह ही मुसकाता है;

जीवन के इस लंबे पथ से—
हर 'इति' जुड़ी हुई हर 'अथ' से,
बिना हिले भी बिना डुले भी—

चुप चुप जीवन-प्राण साँस के रथ पर जाता है।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है।

बीज अंकुरित हुआ धरा पर,
फैला बढ़ा, घना वह तरुवर,
खड़ा खड़ा ही सूख गया वह—

'अथ' का आँचल छोड़ मृत्यु का गीत सुनाता है।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है।

मैं चलता फिर मुड़ आ जाता,
गाया हुआ गीत फिर गाता,
जीवन का चलना फिर अनथक—

अनचाहे भी उसी लक्ष्य को अनरुक पाता है।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है।

लंबी रेखा 'आदि - अन्त' की,
सुख,दुख,पतझड़ की,वसन्त की,
जीवन में शत शत जीवन भर—

दूर निकट के छोर पकड़ता, तजता जाता है।

आठ

बीत गया फिर शेष रहा क्या ?
दोनों हाथ लुटाया दिल ने देना उसे अशेष रहा क्या ?

आँसों आँसों हास चुराकर ,
दिल दिल में मधुमास चुराकर ,
कल की आशा में जो सोये ,
पलकों पलको स्वप्न सँजोये ,
वे हँस भी न सके खिल पाये ,
खिलते खिलते ही मुरझाये ,

मुरझाने वाली कलियों में उगने का उद्देश रहा क्या ?

यौवन जिनका अंगारा बन ,
चमक उठा नभ, पृथ्वी आँगन ,
शीतल मधुर हिमालय सा सित ,
सागर सा गंभीर तरंगित ,
रूप मिला—अरमान बन गया ,
मरण मिला—वरदान बन गया ,

उनके नरक स्वर्ग से मीठे उनको कोई क्लेश रहा क्या ?

जब दिनकर नव ऊषा लाया ,
नव शशि ने किरणों में गाया ,
ताल नया, लय नई उमंगें ,
नई नई भर नई तरंगें ,
पतझड़ में भी नया प्यार ले,
फूलों में नव नव उभार ले,

तिल तिल बुझता दीप उषा को देता नहीं सँदेश रहा क्या ?

नौ

बीत गया फिर शेष रहा क्या ?

दोनों हाथ लुटाया दिल ने देना उसे अशेष रहा क्या ?

'अब भी है खुमार वह बाकी—'
सुनो, पुकार रही है साकी।
'मुझको अब न नींद आती है,
जंजीरें हिल हिल गाती हैं,

चलो सींखचों में रहने दो,
लाशों में गर्मी बहने दो।
हँसती मौत होठ पर जिनके देना उन्हें विशेष रहा क्या ?'

यह होली की रस्म न होगी,
जल जलकर भी भस्म न होगी।
ऐसी वैसी आग नहीं है,
दिल कोई बेदाग नहीं है।

खून न पानी बन पायेगा,
उबल उबल बाहर आयेगा—
जिसका खून बना बहने को दे तू उसे सँदेश रहा क्या ?

चिनगारी से दाग सजाये,
अंगारों के बाग बनाये,
आज जलन से अठखेली कर,
(सोती आग न तू मैली कर,)

मेरा प्यार न बुझनेवाला—
बुझ बुझ कर जल उठनेवाला,
प्राण जलाकर धुआँ समेटे उस पागल को क्लेश रहा क्या ?

दस

रो रही है बादलों से झाँक किसकी आग ?
बूँद में इतिहास मन के लिख, चमकते दाग।

खून पानी बन गया सब प्यार का,
क्षितिज तक उड़ती हमारी हार का,
वह घुमड़ कर टुकड़ियों में जुड़ गया,
जिधर बेचैनी उधर ही मुड़ गया,
रुधिर से न्हाई हुई हर साँस में,
बन गया सावन जलन में, प्यास में।

आग बन आई वही हर बूँद भर अनुराग,
रो रही है बादलों से झाँक किसकी आग !

आज आँखों में धधकता द्वेष है,
खून से लिखता कथा हर देश है,
जो न होना चाहिए वह शेष है,
बम्ब का हर बार 'नव संदेश' है,
डाल दे परदा कि देखे रवि नहीं,
बहक जाए बादलों में कवि कहीं ?

हो गया नर आज दानव, हो गया नर नाग—
रो रही है बादलों से झाँक उसकी आग !

ग्यारह

मानव, तुमसे हार गया मैं—
कैसे प्राण जगाऊँ स्मृति के जब अपना धन भार गया मैं।

स्वर्ग तुम्हारे लिए बनाये,
मधु-मासों के हास बुलाये,
अमृत चषक भी तुम्हें पिलाये—

तब भी तुम न अमर हो पाये, व्यर्थ तुम्हारे द्वार गया मैं।

जीवन का व्यापार बताया,
मैंने आत्म-ज्ञान सिखलाया,
मैंने ब्रह्मानंद पिलाया;

तुम नर, नाश पी रहे—जीवन लेने को बेकार गया मैं।

सावन के घन घिर आते हैं,
रो रोकर सब छिप जाते हैं,
आकर दिवस लौट जाते हैं;

सुनने गया गीत रवि-शशि के व्यर्थ गया, उस पार गया मैं।

अपना ही अपमान किया है,
महा-मरण आह्वान किया है,
कवि का स्वर्ग मसान किया है;

डूब रहे तुम, तुम्हे उठाने गया, डूब मँझधार गया मैं।

मानव तुमसे हार, गया मैं—
कैसे प्राण जगाऊँ स्मृति के जब अपना धन भार गया मैं।

बारह

मैं कब हारा, मैं कब हारा !
सागर में गोते खा मैंने पाया सही किनारा !

शूलों को भी फूल बनाते,
असफलता को धूल बनाते,
जीवन को अनुकूल बनाते;

दिवस-रात के पंखों पर उड़ भूपर स्वर्ग उतारा !

प्राणों का उल्लास चढ़ाकर,
पतझड़ को मधुमास बनाकर,
महा-तिमिर में आस जलाकर

वर्तमान को बो भविष्य में मैंने जाग पुकारा !

हार जीत का आमंत्रण है,
गिरना तो चलने का गुण है,
दौड़ पहुँचने का साधन है;

आओ, चलो, उधर देखो, उग उठा क्षितिज से तारा !

अभी मुझे चलना है बाकी,
तुमको भी ले चलना बाकी,
डरो न यदि निर्बलता झाँकी;

नर को है देवत्व पूजता वहाँ जगत ही न्यारा !

मैं कब हारा, मैं कब हारा—
सागर में गोते खा मैंने पाया सही किनारा !

तेरह

तू हारा, मैं जीत गया।
तेरी भूल मुझे दे जाती हर मंजिल का गीत नया !

तेरे अश्रुपात से मैंने
जो सागर बहता था देखा,
उनकी लहरों से नापी थी
अपने कवि जीवन की रेखा;
तेरा दुख मेरे प्राणों में बस बन 'स्वर्ग-पुनीत' गया !

शैशव में दो साँस मिली थी,
यौवन में उल्लास मिला,
आराधना शक्ति की पतझड़—
के पीछे मधुमास मिला !
तू दौड़ा, जा छिपा मरण में, मरण मुझे बन गीत गया !

तूने स्फटिक-शिला पर
निशि में प्रेयसि का शृंगार किया,
किन्तु भूलकर मद में गुपचुप
कंकाली को प्यार किया ?
लिक्खा मैंने चिर शिव, सुन्दर वह तुझसे अनधीत गया !

आ चल, मेरे साथ दिखाऊँ,
हे अनपायी शक्ति महान ?
तेरे लिए विश्व है सारा,
हस्तामलक मुझे वरदान,
तू पहुँचा न अरे अविनश्वर, बीत गया सो बीत गया !
तेरी भूल मुझे दे जाती हर मंजिल का गीत नया !

तू हारा, मैं जीत गया।

चौदह

स्वर्ग भी मैं ही, नरक भी मैं !
भग्न-लय मैं ही, गमक भी मैं !

मैं उषा का हास हूं दुख की अमा का ग्रास,
स्वप्न में मैं पूर्ण हूं प्रति जागरण में ह्रास ;

जल रहा हूं दीप सा रजनी तमिस्रा में,
गरल पी जाता कभी अपनी बुभुक्षा में ;

और बू मैं ही, महक भी मैं !

नव-प्रसू-शिशु के रुदन में हँस रहा अज्ञात,
विश्व का सौन्दर्य यौवन का नशीला प्रात ;

और यौवन की प्रभा में झाँकता चिरकाल,
मौन कवि के स्वप्न में होता अचिर कंकाल ;

मौन भी मैं ही, चहक भी मैं !

हास जिनके अधर पर है अश्रु उनके मौन,
है प्रतीक्षा में न जाने अनागत वह कौन ?

ढूँढ़ता हूँ फूल बिंधते कण्टकों से हाथ,
पैर में गति पर नियति देती न मेरा साथ !

हर्ष भी मैं ही, कसक भी मैं !

गीत गाता हूँ इधर भीतर उधर है आग,
और रोता प्राण जब पुलकित जगत का राग ;

रूप औ' अपरूप, सुन्दर, घृणित मेरा आप,
मैं स्वयं वरदान अपना औ' स्वयं अभिशाप ;

तिमिर भी मैं ही, झलक भी मैं !
स्वर्ग भी मैं ही, नरक भी मैं !

पन्द्रह

मैं रहा देखता मूक खड़ा—कुछ स्वर बिखरे बन गान गये !

मेघों के प्यार फुहार मधुर ,
बिजली के स्वर साकार मधुर ,
नन्हीं-नन्हीं उमंग लेकर ,
कुछ मीठा दर्द संग लेकर ,
कुछ आँखों में बन स्वप्न गये—कुछ जीवन में बन ध्यान गये !

चाँदनी माँग में भर भर कर ,
रातें चुपके से उतर उतर ,
सपनों से आतीं मुसकातीं ,
औ' नए स्वप्न बनती जातीं ,
तब मेरे मौन पुकार उठे—मधुमास मूक बन प्राण गये !

उनकी पायल के स्वर बोले ,
आँधियाँ पिये आँसू घोले ,
मेरे होशों की हार लिये ,
कुछ दर्द लिये, कुछ प्यार लिये ,
तब और माँगने साँस लगी—साँसों से जीवन दान नये !

कब जीवन मेरा जहर हुआ ,
कब यौवन उनका अमर हुआ ;
मेरी उलझन बन गीत गई ;
उनकी हारें भी विजय नई ,
भर चली बुलाने प्रलय मुझे—
हर लहरों में तूफान नये ।
मैं रहा देखता मूक खड़ा-कुछ स्वर बिखरे बन गान गये !

सोलह

यह क्या कैसा मैंने पाया ?

क्या जाने किस अनजाने में—यह कटु कटु-तर, यह मृदु मृदु-तर ,

चल लहरों सा चंचल सुखकर ,
सित-ओस कणों सा प्रतिपल ढल ,
स्मृतियों की ग्रंथि बाँध अंचल !

मैं निज को बहलाने आया—
यह कैसा क्या मैंने पाया ?

क्यों अनचाहा इसमें मिलता, औ' चाहा मिलता नहीं खूब—

मैं इसी दिशा से ऊब ऊब ,
आशा सी निज आँखें पसार—
कुछ ढूँढ़ रहा हूँ बार बार—

कुछ जाना कुछ न जान पाया—
यह कैसा क्या मैंने पाया !

रजनी में सरिता के तट सम मैं देख पा रहा एक कोर ,

आगे का कोई नहीं छोर
क्या जानूँ केवल वर्तमान ?
दिन सा उज्ज्वल निशि सा अजान !

मेरी ही सीमा बन आया
यह कैसा क्या मैंने पाया ?

सत्रह

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन!

सो रहा है अँधेरे से
लिपट चंचल मन।

साँस की ले तूलिका आकाश के रँग बोर,
खींचता हूँ स्वप्न की तस्वीर चारों ओर,
पर न भर पाती मुखर स्वर, दृगों का इतिहास,
पर न लिख पाती हृदय में तुम्हारा मधुमास!

जागरण बन पी रहा है
कौन यह यौवन?

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन!

सो रहा संसार आँखों में चुराए नींद,
इधर जल कर बुझ चुकी है एक जो उम्मीद।
प्यास भी बुझती न, जलती राख में से आग,
ढूँढ़ते हैं स्वप्न मुझको, हर निशा में जाग!

कौन तट से चला
टकराने लहर जीवन ?

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

आज सैंतालीस वर्षों के सभी क्षण मूक,
रख रहे थे जो निबल अनजान-पथ पग फूँक,
कौन जाने साँस के सँग उड़ गए किस ओर,
पिस गए दिन-रात के दो पाट में शहज़ोर ?

अब नहीं वह मैं,
न मेरी उलझती चितवन ?

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

बोलता कोई सुनाई दे रहा उस पार,
क्या तुम्हीं हो वह बहाता जो नदी बन प्यार,
प्रकृति ने किसको दिया यह प्राण-सा उन्माद,
और प्राणों ने लिया कब रोक—वेग अबाध ?

भूल सुलझा लो
अभी हैं शेष जीवन-क्षन !

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

अठारह

विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों?
मंगल गीतों का मृदुतर स्वर गूँज जगत अपलाप बना क्यों?

तिमिर - ग्रस्त दुर्भाग्य भीम से
काजल से इस काले काले,
शव से छलक उठा सा जीवन
जीवन का संताप बना क्यों?

लहरों से खेला करता रवि
लहरों में ही छिप जाता है,
भूधर पर सिर रखकर जाने
कैसे जलन बुझा पाता है?

कलियों के प्राणों में बैठा—
मूक-गीत-स्वर साध रहा है,
क्या सपनों में हँसने वालों का
यौवन आबाद रहा है?

जाने अपनी इन आँखों मे मैं अपना ही पाप बना क्यों?
विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों?

तुमने चुप चुप मेरे पथ में
बिछा दिये थे नभ के तारे,
किन्तु न जाने कैसे वे सब
लगे मुझे जलते अंगारे ?

ऊब चुका हूँ मैं जीवन से
मरण माँगने को अति आतुर,
मेरे रोम रोम के चिंतन
लगा न मुझको सके किनारे ;

प्राण बना उपहास, न जाने व्यंग्य गीत आलाप बना क्यों ?
रंगिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?

रूपसि, यह सौंदर्य तुम्हारा
कब तक मुझको मान रहेगा ?
कब तक पायल के गीतों में
डूबा मेरा गान रहेगा ?

कब तक सुधा भरी आँखों में
बिजली का संहार रहेगा ?
कौन अवधि तक हृदय किसी का
जलता सा अंगार रहेगा ?

लघु, सीमित मेरे जीवन में प्रिय का रूप अमाप बना क्यों ?
विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?

उन्नीस

आज इस गुरु हार में जाने अमृत भी क्षार क्यों?

कितना महान पुनीत मैं,
कितना विवश भयभीत मैं,
लिखता कथाएँ स्वर्ग की
घन कसक जातीं दर्द की।

मेरे हृदय अनुराग में है आग ही साकार क्यों?

तूफान बाहर उठ रहे,
अरमान भीतर घुट रहे,
है वज्र मेरे एक कर,
है अमृत का घट कर अपर;

संहार फिर चुप चुप सिमट मेरा हुआ 'उपहार' क्यों?

अब कौन साधे, चाल को,
अब कौन बाँधे काल को,
क्या नीलकण्ठ कहीं नहीं,
जिसने पिया विष घट यहीं?

जग नाचता संकेत जिसके वह हुआ लाचार क्यों?

लो, आग में पीने चला,
विषराग पी जीने चला,
लघु आस जो मुझको मिली—
उपहास बनकर वह चली—

फिर मोल यौवन का यहाँ होगा नहीं 'बेकार' क्यों?

बीस

हास भींने स्मृति सलज दृग, प्राण में पुलकन सँजोये,
ढूँढते किसको न जाने स्वप्न आलिंगन भिगोये ?

वारुणी में होश तिरते
हँस उठे अनुराग वासित,
दृगों में बीती खुमारी की—
कथाएँ जगीं अलसित,

प्रिय अधर की बिजलियों ने छू व्यथा के श्वास धोये।

कौन तुम चितवन नशीली—
में उलझ बन गीत जाते;
और स्वप्नों के कुहर से झाँकते—
फिर भी न आते ?

मिली मुझको मधुर सिहरन चाह साँसों में पिरोये।

मैं नशीले स्वप्न सा—
सब भूल अपनापन चुका हूँ।
और भूलों पर उठाए याद—
के क्षण गिन चुका हूँ;

कौन अनजाने हृदय में आज मीठे गान सोये।
हास भींने स्मृति सलज दृग प्राणप्रिय पुलकन सँजोये।

इक्कीस

पहले ही आँसू क्या कम थे ये आग पिये आये बादल।
सागर सी पीड़ा क्या लघु थी आहों से लिपट चले क्यों पल ?

बेचैनी बढ़ती जाती है
क्यों रोम रोम में मानव के ?
अंधेरी उठती आती है
क्यों जीवन से जीवनमय के ?

क्यों ज्वार उठा है अम्बर में
बिजलियाँ कड़कती हैं भू पर,
क्यों महानाश का प्रलयंकर
स्वर सुन पड़ता नीचे, ऊपर ?

पतझड़ ही पतझड़ होगा क्या
शत-शत श्मशान की बारी है,
क्यों कुसुम सुरभि अभिषिक्त धरा
जीवन से ऊबी हारी है ?

जमघट उजाड़ का गैसों में
जमघट उजाड़ का दिल दिल में,

मेरे ये दुर्दिन मीठे से
क्यों आज भरे आते 'पल में',

क्या सूने सुख के गीत हुए
सब निगल स्वार्थ मानव जागे,
क्यों सब मुड़ पीछे प्रेम गए
सब अनाचार आगे - आगे ?

ओ माँझी, लङ्गर डाल देख, तूफ़ान उठ रहा है पल-पल !
पहले ही आँसू क्या कम थे, ये आग पिये आये बादल !

आशाएँ हँसती कलियों की,
विश्वास नाचते कुसुमों के,
हो मस्त थिरकते झूम - झूम
झपकी सी ले समीर झोंके,

मेरा नाचा था रोम रोम
इस फूली फूली महफ़िल में,
था पोर पोर से उलझा मन
दरिया-सा बहता लघु दिल में,

वह कौन प्यार था जो न मिला,
वह कौन कली थी जो न खिली,
वह कौन हृदय था जो न हिला,
वह कौन हविस थी जो न मिली,

अब क्या मिलने को बाकी है
अब क्या पाने को भू पर है ?
आँसू का सागर नीचे है !
आहों का सागर ऊपर है !

प्रिय के वियोग से रो पड़ता
फिर चुप होता आगत को पढ़,
पर यह भविष्य इतना भीषण
है नाच रहा मानव पर चढ़।

विश्वास, प्रेम मानों हमने
सब ढूँढ़-ढूँढ़कर गाड़ दिये,
कङ्कालों पर चढ़कर हमने
सब फूल छोड़ फंखाड़ लिये।

क्या अभिलाषा के सागर को
तिरने का और उपाय नहीं?
क्या जीने देना नर-समाज को
है अभीष्ट असहाय, नहीं?

यदि इतना भीषण हुआ आज जाने क्या होगा कैसा कल ?
पहले ही आँसू क्या कम थे जो आग पिये आये बादल ?

बाईस

आज नई आई होली है ?
महाकाल के अंग-अंग में आग लगी धरती डोली है।

सागर में वड़वानल जागा, जाग उठी ज्वालाएँ नग से ,
प्रकृति-प्रकृति के प्राण जल उठे, हालाहल उबले पन्नग से।

स्वर्ग जल उटे, अम्बर रोये तारों ने आँखें धो ली हैं।

नर आँखों में भर अंगारे, रक्त प्यास लेकर जागा है,
जीवन ने अपनी साँसों से, अपना मरण-दान माँगा है।

मानव के सब बंधन टूटे प्राणों की खाली झोली है।

कृष्ण, बुद्ध, ईसा का कहना, क्या इस नर को व्यर्थ हो गया ?
सोच रहा हूँ बैठा-बैठा, क्या साहित्य निरर्थ हो गया ?

निश्चय, नवयुग देख रहा नव-जीवन की आँखें भोली हैं।

लपटों में साम्राज्य जल रहे, दृष्टि-बिन्दु बदले हैं पल-पल,
महामरण की चिनगारी में, झाँक रहे नव आगत चंचल;

हिम-आवृत शव के अधरों ने एक नई बोली बोली है।
आज नई आई होली है।

तेईस

आज विवशताएँ प्राणों की
एक नया तूफ़ान लिये है,
बलिदानों की चिता सजाकर चिनगारी के गान लिये है!

कैसे रोक सकूँ अन्तर के—
हाहाकार तुम्हारे स्मय से,
कैसे सतत पराजय रोकूँ,
अपनी कल्पित क्षणिक विजय से?

जीवन-महलों की नीवों में
शैशव के सुख गाड़ चुका हूँ,
यौवन-कंगूरों से उड़ते
मीठे स्वप्न उखाड़ चुका हूँ;

आँधी तूफ़ानों से बीते
वे दिन अब कुछ याद नहीं हैं,
आँखों में चुभती आँखों के
पुलकित पल आबाद नहीं हैं;

कुछ स्मृतियाँ हैं भार हृदय की,
कुछ जीवन मुसकान लिये हैं;
आज विवशताएँ प्राणों की एक नया तूफ़ान लिये है।

दिवस निशा के लम्बे पथ पर
हम युग युग से चलते आए,
चले जागते, चले सुप्त भी,
थके, ठहरने किन्तु न पाए !

पीछे कोई कहीं न साथी,
आगे का पथ ज्ञात नहीं है;
फिर भी चलना यदपि अँधेरा,
रोके ऐसी रात नहीं है !

कहाँ चला हूँ कब पहुँचूँगा
बिना लक्ष्य क्या चलते जाना !
कहीं किनारा नहीं दीखता
मेरा पन्थ दूर अनजाना;

अंग अंग टूटे जाते है,
संगी सब छूटे जाते हैं !
मेरे भग्न-स्वप्न से जग के
मीठे सपने टकराते है;

अन्तिम पृष्ठ उलट देने का
कोई खड़ा विधान लिये है।
आज विवशताएँ जीवन की एक नया तूफ़ान लिये हैं।

ठहरो, एक नजर भी क्यों मैं
डाल न लूँ दुनिया के ऊपर !

'ठहरो, रुकने से पहले ही
क्यों न टटोलूँ अंतर के स्वर !

पर पीछे मुड़ सकने का तो
जग में यहाँ विधान नहीं है,
कोई कहता—"चलो मुसाफिर,
पीछे रिक्त-स्थान नहीं है" ?

चलता हूँ चलता जाता हूँ
अंधकार में बढ़ता जाता ;
आलम्बन लेकर अतीत का
निज आगत को घड़ता जाता ;

देखो, ज्यों दिन के छोरों पर
सुबह शाम की गाँठ लगी है ;
इसी तरह जीवन कोनों पर
गत, आगत अनुरक्ति जगी है,

इस अतीत के औ' भविष्य के
पंखों पर ज्यों वर्तमान है,
त्यों स्मृति, आशा के पंखों पर
उड़ता जीवन का विमान है,

कहीं लक्ष्य पर जा गिरने को
तीर चला संधान लिये है ।
आज विवशताएँ प्राणों की एक नया तूफ़ान लिये हैं ।

चौबीस

क्यों आज छलकता जीवन मधु, इन खाली टूटे प्यालों में ?
क्यों जाग उठे पल पल चंचल जीवन रस ले कंकालों में ?

पतझड़ क्यों देख रहा मीठे-
मीठे सपने नश्वर स्वर में ,
क्यों सुरति जागती हलकी सी ,
छलकी सी नीरस गागर में !

मेरे सपनों में सपनों के
संसार नाचते क्यों पल पल ,
सूखी सरिता में भरती है
हिल्लोल लजीलों की कल कल !

मैं प्रलय बाँध निज अन्चल में
निर्माण कर रहा हूँ जग का ,
मैं घोर निराशा में हँसकर
सम्मान कर रहा हूँ जग का ,

ये फूले किसकी आशा से बुदबुद आहों में, छालों में ,
क्यों जाग उठे पल पल चंचल जीवन रस ले कंकालों में ?

दिनकर के केशर कुन्तल ये
सावन की साँसों पर भूले,
निन साँझ प्रलय की लहरों में
छिप जाते सब फूले फूले

मस्ती कलि की मुस्कानों में
मद भरती लहरें लेती है,
औ' किसी हवा के झोंके से
कण कण में जीवन देती है।

मैं फूला कल की आशा में
उल्लासों के भूले डाले,
जीवन रस तृप्त धरा कर दे
नवजीवन के भर भर प्याले;

कण कण में मानवता का स्वर
स्वर स्वर में जीवन जीवन हो;
जीवन में जाग्रति, शक्ति भरे
उल्लसित विश्व अमरांगन हो।

छल, घृणा, व्यंग्य, कटुता न रहे प्राणों के पावन-तालों में।
क्यों जाग उठे पल पल चंचल जीवन-रस ले कंकालों में?

पचीस

पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ?

—प्राण में अविराम गति का द्वन्द भर कर,
और गति में अनवरति का छंद भर कर,

आ रही हूँ सुबह से बहती हुई मैं,
आप ही अपनी कथा कहती हुई मैं,

रात के दो छोर, पथ के दो किनारे,
बह रहा सब जगत-जीवन इस सहारे।

कौन मेरा तट, कहाँ, आधार कितनी दूर ?
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ?

—कह उठा कवि तट नहीं तेरा कहीं है,
मध्य को किस अन्त ने घेरा कहीं है ?

तट हुआ मँझधार का मँझधार क्या फिर !
अन्त हो जिस प्यार का वह प्यार क्या फिर !

मुक्त पारावार में जाकर मिलेंगे,
लहरियों के प्यार में जाकर खिलेंगे;

आप ही संपूर्ण को अधिकार कितनी दूर ?
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ?

छब्बीस

** बिटिया, दुख का अन्त हो गया—*
प्राण व्यथा से जूझ रहा था पाकर मृत्यु बसन्त हो गया!

तीव्र व्यथाएँ श्वास श्वास में बोझिल बादल बन उड़ती थीं,
क्रंदन नभ के तारों में घुल जीवन-गान अनंत हो गया!

मूक व्यथा के भीतर तेरे छिपे हुए थे शत शत क्रंदन,
वही चिता का चट चट स्वर सब वरद-स्वर्ग का पन्थ हो गया!

तूने ज्वलित चिता को अर्पित कर डाला चटपट ही यौवन,
क्या यौवन का स्वप्न सुनहला तुझको दुखद दुरन्त हो गया?

मेरी आँखों में पलकर तू साँसों से खेला करती थी,
स्नेह-दीप बुझ गया आज वह जीवन फैल दिगन्त हो गया!

यह उद्भ्रम चिता - स्वर चंचल मसल रहा है मेरा संबल
तेरा मरण जागरण मेरा जल जल एक उदन्त हो गया?

---

* बेटी स्नेहलता की लम्बी बीमारी के बाद चितादाह पर लिखा गया।

सत्ताईस

स्वप्न की परियाँ उतरती आज बूँदों पर।

निरख हँसते
धरा के शृंगार
रह रह कर।

मोतियों में स्वर्ग का इतिहास लिख आया,

छवि छलक आई
ललक उल्लास-
मधु छाया,

बादलों ने श्वेत तारों के बिछाये जाल,

असंख्यों संदेश
भेजे प्रणय
जादू डाल,

किन्तु गल पानी बने वे पी हृदय का ज्वर-
स्वप्न की परियाँ उतरती आज बूँदों पर।

अट्ठाईस

अनजाने आँखों में बिंधकर
शूल फूल बन कौन गया !
प्रिये, तुम्हारी चरण-चाप सुन
चहक स्वर्ग का मौन गया !

बेहोशी में नए होश भर,
प्राणों में मधु जाम लिए,
तुम झाँकीं जिस ओर झुके दृग
पूर्ण अपूर्ण विराम लिए !

तुम आई थीं एक प्रश्न
बन जीवन में साकार हुई,
बन न सका मैं उत्तर मुझको
प्रश्नावलि ही भार हुई !

प्रथम प्रहर में बाँधा जीवन
शैशव ने निज बंधन में,
सटा मिला मुझको शैशव से
मेरा बंधन यौवन में !

प्राण, बाँध तुम गई न जाने
किस अपने आश्वासन में,

चरण चरण उल्लास मिला
मधुमास मिले सब चिन्तन में!

विहगि, तुम्हारा स्वय यौवन के
चरण चरण का छंद हुआ!
मेरा स्वप्न जागरण बनकर
नए स्वप्न में बन्द हुआ।

जिन आँखों से तुमको देखा
वे आँखें बन प्यार गईं;
सृष्टि न जानें कहाँ खो गई,
दुनिया ही बेकार गई!

कथा पुरानी भी भरती है
मुझ में आ अरमान नये,
प्रिये, तुम्हारे गीत पुराने,
आ जाते बन गान नये।

जब संध्या ने अँगड़ाई ले
रजनी के मुख प्यार दिया,
जब शशि किरणों ने रजनी की
माँग भरी, शृंगार किया;

जब ऊषा ने पलक खोलकर
जीने का अधिकार दिया,

तब तुमने भी एक बार फिर
खोल हृदय का द्वार दिया!

उलझन गीत बनी, स्मृतियाँ सब
प्राण प्राण की साँस बनी,
संशय की सब नग्न आँधियाँ
हृदय बनीं, विश्वास बनीं;

नूपुर की गति पर लय देकर
गाता गीत अतीत गया,
प्रश्नों का ही उत्तर देते
मेरा जीवन बीत गया!

माँगो मत, आश्वासन मुझसे
मैं तुमसे हूँ दूर नहीं,
कौन चरण है इस कविता का
रस मदिरा से चूर नहीं?

प्रेम मार्ग पर चलनेवालों के
घर है आबाद नहीं,
किन्तु तुम्हें पा लेनेवाले
होते हैं बरबाद नहीं!

उन्तीस

रात की गोद् में:-

(१)

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप—
सागर लहरों को सुला गोद, सुख चूम उमंगें रहा माप।

सब मूक नगर, पथ, गली, द्वार,
नर मूक सो रहे—पग पसार,
आँखों में भर कर साध, पुण्य,
आँखों में भर कर अघ-जघन्य,
उर में जीवन की आशायें,
आशाओं की मृदु भाषायें,

कुछ शाप और—
अपलाप लिये,
वरदान और—
अपमान लिए,

अरमान कहीं, अवसान कहीं,
कोने में स्मृतियाँ कहीं मूक,
चञ्चल आकृतियाँ कहीं मूक,
कुत्ते भी चुप, कौए भी चुप,
तस्कर रखते पग दबा चाप—

सुनसान रात, गुप चुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(२)

मानिनी कहीं है रहीं जाग,
झूठे आँसू, झूठाऽनुराग,
पर उमड़ रहा प्रेम हृदय,
आँसू से करती हैं अभिनय,
दीपक से चितवन चक्र मिला,
प्रिय का विह्वल मन रहीं हिला,

बेचैन विनय,
बेचैन हृदय,
बेचैन प्रान,
बेचैन मान,

दम्पति के हैं तूफ़ान मूक,
दम्पति के हैं अरमान मूक,

दीपक जल जल-
धोता उर-मल,

दोनों अपनापन भूल गये;
दोनों अपना मन भूल गये;
दीपक की लौ से मूक मधुर-
दोनों की धड़कन रही काँप—

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(३)

दिल-जले समेटे हुए राख ,
मनचले बटोरे हुए खाक ,
कुछ पत्थर से दिल निर्विकार ,
कुछ पानी से पिघले अपार ,

केवल सपनों में प्यार मिला ,
जीवन में जिनको मार मिला ;

ये विरह और—
वे मिलन लिये ,
वे चाह और—
ये डाह लिये ,

उन्माद कहीं, अवसाद कहीं ,
जीवन में जो कुछ कर न सके ,
अपने घावों को भर न सके ,

दिन से पाकर वे घृणा, व्यंग्य ,
निशि में करते चुपचुप विलाप—

गुमसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

(४)

शैशव की कही कहानी चुप,
उठनी सी कही जवानी चुप,
थी आँखों की नादानी चुप,
अल्हड़ मस्ती का पानी चुप,

उठता उठता सा रह जाता,
चुपके चुपके सब बह जाता,

उद्गार और—
अभिसार और,
अपनी ऐंठन का—
प्यार और,

अवशेष मधुर, उठ चले सिहर,
सब अपना नव-पथ भूल गये,
आँखों में लेकर शूल नये,

वे भी करवट ले नचा रहे,
आँखों में अपने नये ताप—

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(५)

कुछ स्वामी की झिड़कन लेकर,

बेचैनी ऊबा मन लेकर,
तन भूख, भर्त्सना-धन लेकर,

जर्जर तन—मन—
जर्जर जीवन,

विगलित आहें—
छूंछी चाहें,

प्राणों में हाहाकार भरे,
आँखों का जल उपहार भरे,

सो रहे सहेजे हुए हृदय,
दुनियाँ के अपने सभी पाप—

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(६)

कुछ सोते दुख की लिए साँस ,
कुछ सोते कल की लिये श्रास ,

क्या जाने कल भी जिन्हें सत्य ,
लेने दे जीवन का न पथ्य ?

रे, अलग अलग—
मानव का जग ,

सब चुप ही चुप—
अँधेरा घुप ,

केवल मेरा कवि रहा जाग ,
ले हृदय आग वाणी विहाग ,

उस महा नींद का ताल प्रखर ,
हर रात गूँजता रह रह कर ,

पीता है निशि के खप्पर में ,
जग की साँसों को नाप नाप ।

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप ।

(७)

गिरते अचूक हैं बम्ब कहीं,
नर छिन्न भिन्न अवलम्ब कहीं,

आँखों में कटती दुखद रात,
भय विगलित जीवन-पारिजात,

इस ओर मृत्यु—
उस ओर मृत्यु,

झकझोर रही—
सब ओर मृत्यु,

कुछ चौंक रहे कह वज्र गिरा,
मर रहे अँधेरे से टकरा,

निज साँस तोड़, सब आस छोड़,
नैराश्य-निशा से नाश जोड़,

सो रहे समुज्ज्वल जीवन पर,
यम-छाया का कंकाल ढाँप।

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

तीस

यह नभ मेरा आलोक—दीप,
मैं इसकी मधुर किरण चंचल,
मैं वहन कर रहा हूँ जीवन,
यह भरता है जीवन पल पल।

मैंने आँसू से किये मेघ,
अपनी आहों से विकल रात,
पर इसने लिख लिख बिखराया,
रजनी की साँसों में प्रभात।

अनजानी सी सम्मुख आकर,
वह नियति खड़ी हो दूर पार।
इंगित से देती दीप - दान,
इंगित से भरती अंधकार।

कहती:—कलियों के छिपी ओट,
यूथी - सुमनों से कर सुहास,

कल रे कल भर कर अट्टहास ,
आयेगा सजधज कर विनाश ,

हँस लो रे, हँस लो सुमन, आज ,
वह क्षितिज खुल रहा ले मशाल ,
सागर के भीतर गगन भाल ,
कुँचित कर भू के केश जाल ।

संध्या की आँखों में असार ,
नभ का वक्षस्थल चीर चीर ।
आजानुलम्ब आँचल पसार—
मृदु, मुग्ध, गरल सी भरे पीर ।

ले अमृत-सिक्त-नीहार शुभ्र ,
छाती में भरकर नव दुलार ,
औ' खोल गरल की प्रलय—
वीचि फैला सागर में ज्वार ज्वार ।

हीरक सा शुभ्र नयनाभिराम ,
आस्वादित खरतर तमो धाम ,

रजनी को देगा अंधकार,
दिन को देगा आलोक-धाम।

कुसुमों को देकर सजल हास,
कलि को स्वप्नों से कर विभोर;
दिल में मीठी सी साध डाल—
हँस मसल रहा सब पोर-पोर।

वह छोड़ रहा है देख देख,
साँसों से तेरा ही विनाश,
वह पीता जाता है पल पल,
साँसों से जीवन का विलास;

वह देख रहा है एक आँख से,
नर विनाश का पास द्वार,
वह देख रहा है एक आँख से,
नर जीवन का सागर अपार;

तुमने पाए दो अभय दान—
लघु अश्रु, हृदय में महा प्रेम,
अपने मानव के प्रति अगाध,
अर्पण करना सुख सकल क्षेम।

तुमने पाए वरदानों में—
दो प्राण—एकसे सृजन विश्व,
औ' प्राण दूसरे से पालन
है वही दया, धन, बल अहस्व।

तुमने पाए दो हाथ साथ—
है एक—पर अभय, दान दीन,
है एक मरण के लिये निखिल
पीड़ित संताड़ित को अहीन।

तुमने पाए दो पैर सबल—
यति एक, प्रगति को अपर प्रौढ़,
स्थिरता-जीवन की कला लिये—
होती जागृति की सफल दौड़।

है रहा विश्व को वह ढकेल,
पीड़ित प्राणों से खेल खेल।
नव नव विनाश का महा ग्रास,
सुख में दुख की कर रेल पेल।

आँखों में भर कर विजय वहि
वह जला रहा है रोम रोम।
जग अपनी आशा की समाधि—
पर चढ़ा रहा निज प्राण होम।

इक्कीस

जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश ;
घने अंधकार के कोए चीर में खोज रहा कुछ आस पास ;

उन्माद भरे कंपन अनन्त ,
अवसादों का ले चल विशेष ,
मैं देख नहीं पाता भविष्य ,
मैं पकड़ कहाँ पाता अशेष ।

मैं खोज रहा अपना अतीत ,
जीवन-दीपक में वर्तमान ;
जाने अदृष्ट ने किस लिपि में—
लिख डाला मेरा नव विधान !

तुम कहते मानव है पुनीत—
फिर भी मैं कितना आज भीत !
मैं उसको कहाँ पकड़ पाया—
जो मेरा था पर गया बीत !

अमरत्व ढूँढने चला अभी—
मिल गया मार्ग में ही विनाश ?

जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश ?

मेरी गति में है नियति गुप्त—
जो खींच रही रह रह लगाम ;
मैं जैसे दौड़ा ज़रा दूर ,
गिर पड़ा लड़खड़ाकर अनाम ;

चहेका, सहमा सा, भ्रमित, चकित ,
औ' थका हुआ आल्हाद-हीन ;
भर एक आँख में विनय अश्रु ,
भर अपर आँख आशा नवीन ;

मैं देख रहा हूँ बार बार
इस पार और उस पार मौन ;
उमड़े मेघों की लहरों से ,
अनजान बुलाता मुझे कौन ।

क्या जाने कितना हर्ष लिये
जब आ जाती है रजत रात ;
तब मीठी अँगड़ाई लेकर—
करने लगती सब सृष्टि बात ,

'यौवन का स्वर्ण विहान क्षणिक—
जीवन की जागृति मृत्यु ग्रास ,
जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश ;

तुम कहते मुझको कलाकार ,
मैं कहता निजको घोर असत ;

मैं पाकर भी जो रस न सका,
मैंने, कब जीवन किया महत;

मैंने देखा निज हृदय झाँक—
चेचक सा चिह्नित दग्ध, मग्न,
दाग़ों से पुर, दर्दों से पुर,
कुछ मीठी आँखों में निमग्न!

वह मुझको पाकर भी न बना—
मेरा, भटका, अटका, अपन्थ।
दे गया मुझे स्मृति अवह भार,
दे गया मुझे पीड़ा अनन्त;

आँखें भी उठ उठ वहीं चलीं,
जिस ओर गया वह रसिक राज;
मैं खोज न पाया अपनापन,
मैं सब कुछ खोकर चला आज!

कैसे कह दूँ आलोक इसे-
कैसे कह दूँ मानव-विकास।
जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश;

जीवन क्षण विस्मृति में ढलते,
आशाएँ ढलती हो निराश;
कलियाँ फूलों में बदल रहीं,
बदली बूँदों का बन विकास;

लो सुनो, कोकिला बोल रही
कह रही चली मैं चली हाय ;
कल का सा स्वर मुझमें न आज ,
क्या कल के स्वर का यह उपाय ?

मैं लगा भूलने ढाल ढाल—
विस्मृति में अपनापन अपंग ,
आया .खुमार सब मस्त अंग ,
आया उतार बदरंग रंग ;

सपनों ने यौवन के भीतर
झाँका, देखा, हँस रहा काल ,
सपनों ने यौवन के पद से
चिह्नित नापी कंकाल चाल ?

वे सहम गये, मैं चौंक उठा ,
ठिठका, धीमे हो गये पैर ,
बुझ गया हृदय, ढल चला रूप ,
यह कौन आ घुसा यहाँ गैर ?

मैंने देखा फिर निकल रहा—
जीवन से मेरा समुपहास ।

जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश !

बत्तीस

कवि के जन्म दिवस पर—

आज सपने भी न अपने मैं अकेला कौन साथी—

अमृत पीने को अधर जब
चषक से मैंने लगाए,
गरल फेनों से झुलस कर
स्वप्न मेरे लौट आए।

पुष्प-पथ मेरा न जाने,
बीन क्यों अङ्गार लाया,
साँस का पीकर उजेला,
अंधकार अपार छाया?

मैं अकेला मौन साथी, आज मेरा कौन साथी—

एक दिन वह था कि आँखों में
छिपाकर प्यार अपना,
भर दिया मेरे हृदय में
किसी ने संसार अपना;

चाँदनी की सुरा प्राणों के
चषक में ढाल कोई—

पिला, शैशव को तरंगित -
कर गया बेहाल कोई;

हँस उठे तब प्राण दो,
उच्छ्वास दो, संसार दो ही,
मधु अनन्त निशीथिनी में,
हृदय के अभिसार दो ही,

दो दिशा की तरह अब वे
दूर आँधी के उड़ाये,
जागते हैं सहस्त्रों रवि-
शशि नयन के पथ बिछाये।

मैं अकेला पन्थ साथी और तिमिर अनन्त साथी—

पहर कितने रात कितनी,
पथ विषम कण्टक भरा है;
प्रश्न में यौवन बिताया-
शेष उत्तर में जरा है;

मौन है अज्ञात मुझसे,
ज्ञात है निर्वाण निर्बल,
गिन रहा हूँ खड़ा तट पर,
काल की लहरें समुच्छल।

आज सैंतालीस वर्षों का
हुआ यह बन्द लेखा,
एक नव अज्ञात घन से
दामिनी ने झाँक देखा;

पर न मैं कुछ देख पाया
देख भी मैं किसे पाता,
क्यों न कुहरे से अनागत
झाँकता इस ओर आता?

अब अपरिचित साँस साथी, हीन-बल-विश्वास साथी—

कौन दिनकर कर सका है
अनागत का पथ प्रकाशित;
कौन शशि जो अमृत बरसा
कर रहा है धरा धवलित?

किन्तु जाने दो, मुझे होगा
तिमिर में सदा बढ़ना;
साँस दीपों से अँधेरा—
चीर अपना पंथ गढ़ना;

यथामति सब ही अनेकों,
पथ जगत जीवन बनाते;

धूम जो अपने घरों के,
द्वार पर ही लौट आते;

और अपने ध्वंस के
परिहार को हैं मोड़ उनके;
और अपने स्वार्थ में
सीमित निरंतर छोर - उनके।

वहीं 'अथ' है अन्त साथी और जीवन पन्थ साथी—

आ रहा जीवन सुरा पीता
न जाने शेष कितनी?
तिक्त, कटु, मादक, अमृतमय,
गरलमय, अवशेष जितनी?

किन्तु, पतझड़ की निशा—
मधुमास के दिन की कहानी,
वहन करती रही 'अथ' से
एक थाती सी 'जवानी'—

सौंपती सी देखता हूँ
जरा को जो स्वयं निर्बल,
एक कर स्मृति भार जिसके
अपर कर है मृत्यु सम्बल,

पा रहा अनजान नित
जाना हुआ सो भी रहा हूँ ;

धूलि दाय का द्वार साथी—जीत जग की हार साथी—

काल की दृढ़ कील पर है
घूमता भूगोल पल पल ,
क्षण, घड़ी, दिन, रात, महीने ,
वर्ष, युग, कल्पान्त चंचल ;

काल का कौतुक यही
उत्पन्न करना लील जाना ,
पुतलियों के द्वन्द्व से हँसना
कहीं जाकर समाना ;

बिलबिलाते हैं सहस्रों कीट
ज्यों पंकिल नदी में ,
हम न उनके कहीं सुनते
हर्ष शोकोच्छ्वास धीमे ;

ठीक ऐसे ही असीमित हास ,
शोक, जरा, जवानी ,
भोग कर जीना जगत को
सिखाना लिख लिख कहानी ।

क्षणिक रोदन, हास साथी, अनागत की आस साथी -

किन्तु लहरों पर लिखा नित
घुल रहा इतिहास सारा,
सिवा नर के याद रखता
कौन कुहरित धुन्ध धारा।

याद भी कुछ दिवस रहती
भूल से चिपटी हुई सी,
काल के गुरु गर्भ सोती
प्रलय से लिपटी हुई सी;

जो गया है बीत वह क्या
कभी आने को गया है?
हो रहा है जो, नहीं होता
कभी वह फिर नया है?

सभी आपेक्षिक जगत का,
रुदन है औ' हास भी है,
सभी सीमित सतत पतझड़,
विनश्वर मधुमास भी है।

कुछ क्षणों का खेल साथी, कुछ क्षणों का मेल साथी—

इस महा-युग के उदधि में,
लहर का अस्तित्व कितना,
क्षुद्र सैंतालीस वर्षों का
विनश्वर रूप कितना?

ग्रन्थ औ' खँडहर पुराने
सुबुक कर कहते कहानी,
किन्तु अणु में भी न होती
व्याप्त हलचल मूक वाणी;

शौक से गाता रहा मैं
ताल भी बाकी नहीं है,
खा गया है जो मुझे वह
काल भी बाकी नहीं है;

घड़ी, पल, दिन, रात, खाकर
बढ़ा मेरा प्राण जीवन,
मुझे खाकर युग जियेगा
युगों को खाकर निधन-धन।

यही काल अकाल साथी, भूत विश्व-व्याल साथी--

कहोगे तुम फिर न क्यों मैं
मूक हो जाऊँ, न बोलूँ,

और अपने प्राण के अन्तस्तरों
को भी न खोलूँ ?

खोलने पर भी खुला है भेद
क्या जीवन मरण का,
चोलने पर भी सुना है
क्या रहस्य सृजन-गहन का?

यथा मति में लक्ष्य, गति में
प्राप्ति की व्यापक दिशा है,
यथा दिन में सृजन, पोषण के
लिए जीवन निशा है;

इसी विधि-'मानव जगत' का
ध्येय बढ़ते चले जाना।
टूटने देना न गति को
सतत बढ़ते चले जाना।

'पूर्ण' का है 'अंश' साथी,
जन्म का है ध्वंस साथी—

आज सपने भी न अपने, मैं अकेला कौन साथी—

तेतीस

जर्जर पत्र और वृक्ष :-

आज तुम भी जा रहे हो कर मुझे कंगाल ;
बिगड़ क्या जाता भला जो ठहरते कुछ काल ?

सत्र गये मैंने कहा—
'जाओ समय की चाल है ,
अंत है हर 'आदि' का—
दिन के अनंतर रात है ;

एक तुम थे पात जर्जर—
पात सूखी डाल के ;
एक मैं नभ तक चढ़ा—
संदेश ले पाताल के ;

अब कि जब यौवन गया ,
फिर प्रणय भी क्या नाम ले ;
प्यार कब तक तिमिर में—
बुझते दिलों को थाम ले ।

आज स्मृति का ठूँठ मैं भग्नाश हूँ कंकाल !'

—नाचता, हँसता, थिरकता
पत्र यों, कहने लगा ;
वायु के संगीत में भर स्वर
कि जब बहने लगा—

'कौन सा सुख स्वर्ग था—
जो गोद में पाया नहीं,
चूमकर मुख फूल का-
आमोद भर लाया नहीं!

चाँदनी के नाच में झुक—
झूमकर गाया नहीं,
और दिन के उजाले में—
प्यार बिखराया नहीं।

सौंप दूँ मैं क्यों न निज को आज बंधु विशाल?

तुम्हारी ही गोद में—
अभिमान जीवन का मिला;
तुम्हारी ही गोद में—
मधु दान जीवन का मिला;

इस हमारी पराजय में—
चिर विजय का गान है;
सुनो, जीवन की जड़ों में—
मरण का वरदान है;

चाहता हूँ मैं चरण में
खाद होकर सो रहूँ;
तुम्हारे मधुमास में वर-
याद होकर खो रहूँ;'

बन्धु, मेरी मृत्यु से तुम हो समुन्नत भाल;
आज तुम भी जा रहे हो कर मुझे कंगाल!

चौंतीस

विक्रम संवत्सर :–

वर्ष, मास, दिन, घड़ी, विपल ,
पल, जो साँसों के साथ चला ,
दो हज़ार की ग्रंथि लगा रवि
उसमें आज नया निकला !

दो हज़ार कितना-सा छोटा
लघु-श्लोक का पाद नहीं।
कितने जीवन और मरण ,
उत्थान-पतन कुछ याद नहीं।

है अतीत का गह्वर भी तो
सादि सन्त पर वृहत महान।
जिसमें सोते सृष्टि, निलय ,
जल-प्लावन औ' भूकंप अजान।

महाकाल के वृहत-ग्रंथ में
दो हज़ार का कितना मोल ?
जिसमें लक्षावधि शताब्दियाँ
समा गये भूगोल, खगोल ?

जिसके प्रश्वासों से निर्मित
होते है अनंत संसार ;
जिसके श्वासों में हँस उठते
महाप्रलय के तमो विकार ;

जिसके केवल संकेतों पर
है नर्तित अनंत ब्रह्माण्ड ;
जिसके अट्टहास से हँसता ,
नभ पृथ्वी का यह उद्भाण्ड ;

है मनुष्य भी महाकाल का
एक ज्वलंत पिण्ड साकार ;
है मनुष्य भी महा-प्रकृति का
मधु-नवनीत भाव उद्गार !

वही प्रकृति की सार्थकता है
चरम परम-विज्ञान विकास ,
भाव-अभाव, दुःख-सुख, जीवन-
मरण, कला-साहित्य विकास ?

इसके लिए विनिर्मित पृथ्वी,
भूधर, सर, सागर, सब लोक।
इसके लिए विनिर्मित ऋतु, गति,
रवि-शशि का उज्ज्वल आलोक!

× × ×

तुम मानव की एक किरण ले
आये किन्तु अतीत हुए।
स्मृतियाँ शेष रहीं कृतियों की
तुम युग-श्वास पुनीत हुए।

हे संवत्सर, महाकाल में
काल तुम्हारा चिह्न हुआ।
निकला सूर्य अशेषच्छवि ले
दिवस-मान सा छिन्न हुआ।

उषा उदय के संग संग ही
भू को स्वर्ग बना डाला।
किंतु बन गया स्वयं सभी वह
अमा-निशा की कटु-हाला।

जो उत्थान बना वह बरबस,
पतन बना, खग्रास बना।

युग-दीप

जो जीवन बन आया भूपर
वही हमारा ह्रास बना!

दीर्घ विजय बन गई पराजय
ह्रास मृत्यु-उल्लास हुआ।
जिस प्रकाश ने तम को खाया
वह प्रकाश का ग्रास हुआ!

आने वाले चले गये सब
स्मृतियाँ आज विशेष रहीं।
फूल फूल पर आभा आई
आई किन्तु न शेष रही!

तुमने बौद्ध-विभव को देखा
नया ज्ञान, संसार नया।
प्राणदान में जीवन देखा
जीवन में व्यापार नया।

सत्य, अहिंसा के बल पर युग
नया और विश्वास नया।
वह भी रहा, न रह ही पाया
कोई भी उल्लास नया!

नाटककार विश्व के, कवि-गुरु
कालिदास तुमने देखे।
बाण, अमर, भवभूति, हर्ष औ'
दण्डि, माघ तुमने देखे।

मम्मट, लल्लट, रुद्रट, पण्डित,
विष्णुगुप्त जयदेव अनेक।
तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी,
हरिश्चंद्र कोविद सविवेक।

तुमने देखा जिसको चढ़ते,
उसको भी गिरते देखा।
उठते प्रलय मेघ को देखा,
बूँद बूँद झिरते देखा!

हूणों, तातारों, मुगलों के
टिड्डी-दल आते देखे।
शैशव में ही यौवन जिनके
खिलते, मुरझाते देखे!

तुम वैभव के काल व्याल की
कैंचुल हुए, अतीत हुए।
तुमने देखा हर्ष बदल कर,
दुःख-स्मृति के गीत हुए।

जग को दलने वाले यौवन
पद दलितों की धूलि हुए।
हँसने वाले फूल काल के
शूल बबूल समूल हुए।

सौन्दर्य से मुखरित वे स्मय,
वे यौवन के गान नये;
जिनसे गर्वित थे बसंत के
स्वर्ग भरे सामान नये।

वे पृथ्वी के गहन गर्भ में
काल वृत्त के केश हुये;
एक बिन्दु से कालोदधि में
लीन हुए, निःशेष हुए!

नव नव शासन, नव विधान से
नई शान से राज उठे।
कुछ उठते उठते जा सोये
कुछ ले टूटे साज उठे।

यह भी देखा, यह भी देखो
मानव का व्यापार नया।
हँस हँस विष पीने वालों का
नाव नया, शृंगार नया।

रण उन्मादी इन राष्ट्रों को
'गाँधी' भी समझा न सके,
जो इस युग के 'बुद्ध' कहाते
ये रण आग बुझा न सके।

सभी विश्व में धू धू करके
महानाश है जाग उठा,
सभी दिशाएँ आग उगलतीं
जीवन रो रो भाग उठा।

और तुम्हारा यह भारत भी,
दीन, दरिद्र, गुलाम बना,
किंकर्तव्य विमूढ़, दलित, अवि-
वेकी, अज्ञ, अनाम बना।

ऐक्य आज तो स्वप्न हो गया
स्वप्न हुआ जीवन अपना,
जो आया वह भाग्य बन गया
भाग्य बना मरना, तपना।

दो हज़ार की ग्रंथि तुम्हारी
विष-ग्रंथि सी फूट रही,

जिससे भूख महामारी की
चिनगारी सी छूट रही।

विक्रम की पीयूष लता क
पुष्प ? न हालाहल उगलो,
और न मानव के विवेक को
महानाश मुख से निगलो।

बदलो मरण महाजीवन में
जीवन को जाग्रत कर दो ?
मानव को मानव बनने का,
'हे संवत्सर', नव वर दो।

आगे की सदियों में कोई
विषमवाद संवाद न हो,
मानव की दाढ़ों में मानव,
रुधिर बिन्दु का स्वाद न हो।

जीवन में विवेक हो, सुख हो,
परहित का प्रतिवाद न हो।
साम्यवाद हो, विश्व-बन्धुता,
हर्षोत्कर्ष: विषाद न हो।
